मुगल दरबार में ब्रजभाषा

आरंभिक आधुनिक भारत (1500- 1800) के दौरान ब्रजभाषा उत्तर भारत की एक प्रमुख जनभाषा या देशी भाषा (वर्नाकुलर लैंग्वेज) के रूप में स्थापित थी। साहित्यिक क्षेत्र में भी इस जन भाषा की विशिष्ट भूमिका थी।वर्तमान में ब्रज शब्द भगवान कृष्ण और वैष्णव परंपरा से जोड़ा जाता है जो कि मथुरा एवं वृंदावन क्षेत्र में अधिक प्रचलित है परंतु 16 वीं शताब्दी के बाद से ही ब्रजभाषा का साहित्यिक विस्तार होता रहा। यद्यपि ब्रजभाषा अपने विस्तार एवं प्रसिद्धि के लिए अपने कुछ महत्वपूर्ण कृष्ण उपासक कवियों के लिए भी आभारी है परंतु यह एक दरबारी भाषा भी रही है।

मुगल दरबार में बृज भाषा के साहित्य के संरक्षण के संदर्भ में अभी तक बहुत कम अध्ययन किया गया है, जबकि फारसी भाषा एवं साहित्य के संदर्भ में यह कमी नहीं दिखाई पड़ती। यद्यपि फारसी ने मुगल साहित्यिक परंपरा में सदैव सर्वोच्च स्थिति को बनाए रखा परंतु इसके बावजूद बादशाहों एवं मुगल अमीर वर्ग की एक बड़ी संख्या में ब्रजभाषा को भी साहित्यिक भाषा के तौर पर प्रोत्साहित किया। फिर भी मुगलों के ब्रजभाषा को संरक्षण प्रदान करने के संदर्भ में कोई विशेष ऐतिहासिक अध्ययन सामने नहीं आता। यह भी पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं है कि किन-किन ब्रजभाषा कवियों को बादशाहों एवं अमीरों ने संरक्षण प्रदान किया था। इस कमी के संदर्भ में एलिसन बुश का कहना है कि कुछ ब्रज साहित्यिक स्रोत खो गए और कुछ अन्य कभी भी प्रकाशित नहीं हो पाए। यदि कुछ प्रकाशित हुए भी तो वह बहुत पूर्व काल पहले हुए हैं जो आज सर्व सुलभ नहीं है।

फिर भी मुगल बादशाहों एवं ब्रजभाषा कवियों के आपसी संबंधों के किस्से आधुनिक शोध में भी सामने आते रहते हैं। इनमें से एक कहानी कवयत्री प्रवीण रे से संबंधित है,जो ओरछा राजा इंद्रजीत की दरबारी कवयत्री थीं और ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि केशवदास की शिष्य परंपरा से थीं। उन्होंने अकबर के अपने दरबार में आमंत्रण को अस्वीकार कर दिया और अपने इंकार को एक दोहे के रूप में भेजा,जिसमें कहा गया कि केवल निम्न जाति के लोग,कौवा और कुत्ते ही दूसरे की जूठी थाली प्रयोग करते हैं। मुगल बादशाहों एवं ब्रजभाषा कवियों के संबंधों की सैकड़ों कहानी हमें देखने को मिलती हैं। इनमें से एक प्रसिद्ध उदाहरण *'चौरासी वैष्णव की वार्ता '* से संबंधित है, जिसमें सूरदास ने मुगल दरबार में उपस्थित होकर कविता करने से मना कर दिया था।

यद्यपि बृज भाषा से संबंधित इस प्रकार के अनेक वर्णन देखने को मिलते हैं और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इनकी प्रमाणिकता पर संदेह भी उपस्थित होता है परंतु इसके बावजूद मुगल दरबार से संबंधित इनकी पर्याप्त उपलब्धता हमें सत्य एवं इनकी प्रमाणिकता को जानने के लिए प्रेरित करती है। उपर्युक्त दो उदाहरण जो यहां पर उद्धृत किए गए हैं,उनसे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि ब्रजभाषा कवियों का मुगल दरबार में उपस्थित होने से इनकार करना उनके द्वारा मुगलों का प्रतिकार करने जैसा भी था। सबसे बड़ी बात यह प्रतिकार ऐसे समय हो रहा था जब संपूर्ण उत्तर भारत मुगलों की अधीनता स्वीकार कर चुका था। ऐसे में सामाजिक एवं साहित्यक इतिहासकारों के

समक्ष इन प्रचलित कहानियों की प्रमाणिकता को परखने की समस्या सदैव उपस्थित रहती है।

इस संदर्भ में वेलचरू नारायण राव, डेविड सलमान एवं संजय सुब्रमण्यम जैसे इतिहासकारों ने यह परामर्श दिया है कि इन साहित्यिक स्रोतों का बड़ी सावधानी पूर्वक परीक्षण किया जाना चाहिए जिससे कि इनमें उपलब्ध संदेशों एवं सूचनाओं को पकड़ा जा सके। उन्होंने इतिहासकारों को चेताया की काव्यात्मक स्रोतों के प्रति कठोर एवं संकुचित दृष्टिकोण नहीं रखना चाहिए जैसा कि कल्पनात्मक गद्य रचना के संदर्भ में देखने को मिलता है क्योंकि समकालीन परिस्थितियों के लिए या सूचनाओं का भंडार साबित हो सकते हैं इसलिए ब्रजभाषा साहित्य की मुगल भारत के संदर्भ में पर्याप्त महत्ता है क्योंकि यह मुगल साम्राज्य को निचले स्तर से समझने का अवसर प्रदान करता है।

बृज भाषा के कवि अपना संबंध परंपरागत ब्रज साहित्य परंपरा से जोड़ते हैं और कवि कुल के सदस्य के रूप में अपनी पहचान स्थापित करते हैं । ब्रज कवियों का समुदाय विषमता से परिपूर्ण था क्योंकि इनमें विभिन्न जातियों एवं धर्मों के लोग शामिल थे। ब्रजभाषा साहित्य सांस्कृतिक समन्वय एवं सह धर्मिता का उदाहरण भी प्रस्तुतकर्ता करता है। ब्रजभाषा कवियों की अपनी एक विशेष शिक्षण परंपरा होती थी, जिनमें कवियों को काव्य रचना एवं साहित्य की शिक्षा प्रदान की जाती थी।

अकबर एवं जहांगीर से संबंधित ब्रजभाषा कवि

अकबर के दरबार से बृज भाषा हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि गंग भी जुड़े थे। इनकी जन्म तिथि एवं स्थान विवादास्पद है परंतु गंग रीतिकालीन काव्य परंपरा का प्रथम महत्त्वपूर्ण कवि माना जाता है और इनकी रचनाओं में गंग पदावली,गंग पचीसी, गंग रत्नावली के अध्ययन से इनके संबंध अकबर के अन्य दरबारी कवियों एवं विद्वानों जैसे रहीम खानखाना बीरबल, मानसिंह टोडरमल आदि से भी पता चलते हैं इनके अलावा ब्रजभाषा कवियों के संदर्भ में भी गंग की रचनाओं से जानकारी प्राप्त होती है परंतु संबंधों के ऐतिहासिक प्रमाण जुटाना एक गहन शोध का विषय है।

अकबर के दरबार में ब्रजभाषा के एक प्रमुख कवि केशवदास (1555-1617) भी थे। वह मुख्य रूप से बुंदेलखंड के एक छोटे से राज्य ओरछा से संबंधित थे और संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। संस्कृत उनके परिवार की परंपरा में शामिल थी परंतु केशव ने अपनी कविताओं के लिए ब्रज भाषा को अपनाया। अकबर की सेना ने जब ओरछा पर कब्जा कर लिया तो केशवदास अकबर के दरबार से जुड़ गए। केशव दास द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या नौ मानी जाती है, इनमें रसिकप्रिया, कविप्रिय एवं '*जहांगीरजसचंद्रिका*' का महत्वपूर्ण स्थान है।

केशवदास ने ब्रजभाषा की काव्य परंपरा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनकी भाषा सामान्य जन के लिए भी पठनीय थी क्योंकि वह अपनी कविताओं में बृज भाषा के साथ-साथ संस्कृत के तत्सम शब्दों, हिंदी, बुंदेलखंडी एवं फारसी के शब्दों का भी प्रयोग करते रहते थे। यही कारण रहा कि वह अकबर एवं जहांगीर के दरबार की काव्य परंपरा के प्रमुख स्थान बना पाए।

बृज भाषा के एक प्रमुख कवि बिहारी भी थे। परंपराओं से ऐसी जानकारी प्राप्त होती है कि बिहारी रीतिकालीन कवि केशवदास के पुत्र थे और वह अपने जन्म से ही आगरा, मथुरा, ग्वालियर एवं ओरछा जैसे राज्यों से जुड़ गए थे।एक अन्य अनुश्रुति से बिहारी एवं केशवदास के परस्पर जुड़ाव के संबंधों के बारे में पता चलता है कि जब बिहारी के पिता ओरछा में जाकर बसे तो उसे केशवदास से काव्य की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ था। बिहारी के संदर्भ में ऐसा भी कहा जाता है कि वृंदावन में मुगल बादशाह शाहजहां के पड़ाव के दौरान उसकी मुलाकात बादशाह शाहजहां से हुई और वह तभी से मुगल दरबार से जुड़ गया। परंतु कुछ समय बाद वह यह भी देखकर निराश हुआ कि दरबार में बादशाह द्वारा फारसी भाषा को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। यही कारण रहा कि उन्होंने मुगल दरबार छोड़कर अंबेर के राजा जय सिंह का संरक्षण स्वीकार कर लिया था और अंबेर के संरक्षण में ही बिहारी ने सतमाला नामक रीतिकालीन परंपरा से संबंधित 700 दोहों का एक ग्रंथ लिखा।

तानसेन (1500-1586) हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत परंपरा के प्रमुख कवि थे। उनका जन्म एक हिंदू परिवार में हुआ था और मध्य प्रदेश के उत्तर पश्चिमी क्षेत्र में उन्होंने संगीत की शिक्षा को पूर्ण किया था। अपनी वयस्क अवस्था में वह रीवा के हिंदू राजा रामचंद्र सिंह के संरक्षण में रहे। तानसेन की संगीत की योग्यता के चर्चे मुगल दरबार में भी होने लगे थे।इसी से प्रभावित होकर बादशाह अकबर ने उन्हें मुगल दरबार का संरक्षण स्वीकार करने के लिए आमंत्रित किया।लगभग 60 वर्ष की अवस्था में उसने अकबर के दरबार में संगीत का प्रदर्शन प्रारंभ किया था और जल्द ही वह अकबर के नवरत्नों में गिना जाने लगा।

तानसेन ने ध्रुपद एवं कुछ नए रागों की भी रचना की एवं संगीत साहित्य से संबंधित दो पुस्तकों '*श्री गणेश स्त्रोत*' एवं '*संगीतासारा*' की भी रचना की। तानसेन ने संगीत रचना में कई शैलियों का प्रयोग किया और अपनी रचना में हिंदू पुराणों को आधार बनाया और इन रचनाओं में ब्रजभाषा को भी प्रमुख स्थान दिया।

ब्रजभाषा परंपरा में अब्दुल रहीम खानखाना का भी स्थान महत्वपूर्ण था। अब्दुर्रहीम खानखाना (1556- 1627) एक बहुमुखी प्रतिभा का व्यक्ति था। यद्यपि फारसी विद्वानों एवं साहित्यिक परंपरा से घिरा हुआ था। परंतु कुछ स्त्रोतों से जानकारी प्राप्त होती है कि वह ब्रजभाषा जैसी परंपरागत क्षेत्रीय भाषा को भी संरक्षण प्रदान कर रहा था। इसकी सूचना कवि गंग की कुछ उन पंक्तियों से प्राप्त होती है, जिन्हें उसने रहीम खानखाना की प्रशंसा में लिखा था।साथ ही फारसी स्त्रोत उसका यहां की मूल भाषाओं के जुड़ाव को दर्शाते हैं। कई अवधी एवं ब्रजभाषा की रचनाओं का जोड़ाव रहीम खानखाना के साथ दर्शाया जाता है।

रहीम के साहित्य संग्रह में से दो का संबंध ब्रज भाषा से है। एक का नाम '*कृष्णभक्ति*' है,जो कृष्ण को समर्पित है और दूसरा '*नायिकाभेदी*' जो महिलाओं के विभिन्न चरित्रों के बारे में जानकारी प्रदान करती है।'*नायिकाभेदी*' रीतिकालीन काव्य शैली में लिखा गया है, जिसमें दैनिक जीवन की स्थितियों

को दर्शाया गया है। इसके अलावा रहीम का एक अन्य कार्य जो परंपरागत साहित्य शैली से थोड़ा हटकर था, जिसे '*मदनाष्टक*' नाम से जाना जाता है। इसमें 4 भाषाओं संस्कृत, फारसी, ब्रिज, एवं खड़ी बोली का प्रयोग किया गया है। अबुल फजल के संदर्भ में भी ऐसी जानकारी प्राप्त होती है कि वह मुख्य तौर पर फारसी का विद्वान था परंतु यहां की मूल भाषाओं के प्रति उसका लगाव बना हुआ था। ब्रजभाषा के मुगल दरबारी कवियों के साथ उसके संबंधों के संदर्भ में ऐसा समझा जा सकता है।

शाहजहां द्वारा ब्रजभाषा कवियों का संरक्षण

शाहजहां का दरबार भी बहुत से प्रसिद्ध संगीतकारों,कवियों एवं विद्वानों से भरा रहता था। इनमें से बहुत से कवि ब्रजभाषा की परंपरा से संबंधित थे। शाहजहां को संगीत एवं साहित्य के प्रति रुचि थी, उससे जुड़े ब्रजभाषा कवियों में प्रमुख नाम कविंदाचार्य सरस्वती का आता है,जो महाराष्ट्र के ब्राह्मण थे और संस्कृत परंपरा से संबंधित थे। उनका ब्रजभाषा का कार्य '*योगवशिष्ठसारा*' जिसे '*जनानासारा*' के नाम से भी जाना जाता है। यह एक ब्रजभाषा के दोहों का ग्रंथ है। इसके अलावा एक अन्य ग्रंथ जिसे '*समर सारा*' के नाम से जाना जाता है, जिसका प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ है। यह खगोल शास्त्र पर ब्रजभाषा साहित्य है। '*कविंदाचार्य कल्पलता*' एक बहुउद्देश्यीय ब्रजभाषा संग्रह है,जिसमें राजनीति, संगीत, धर्म आदि पर ब्रज संगीत उपलब्ध है। इनकी रचनाओं से हमें इस बात की जानकारी प्राप्त होती है कि मुगल बादशाह ब्राह्मण विद्वानों को संस्कृत की अपेक्षा ब्रजभाषा में कविताएं करने के लिए अधिक प्रोत्साहन देते थे।

शाहजहां के दरबार से संबंधित एक अन्य बृज भाषा कवि चिंतामणि त्रिपाठी था। उसके द्वारा लिखा गया '*रसविलास*' शाहजहां द्वारा काफी पसंद किया जाता था परंतु आज तक इस ग्रंथ का प्रकाशन नहीं हो पाया है। चिंतामणि का स्थान दरबार में फारसी एवं अन्य भाषाओं के विद्वानों में बहुत सम्माननीय था।

आगे यही परंपरा औरंगजेब एवं एवं उसके उत्तराधिकारीयों के मध्य भी जारी रही। औरंगजेब कालीन राजकुमारों एवं अमीर वर्ग ने ब्रजभाषा को संरक्षण प्रदान किया। औरंगजेब के प्रशासन में नौकरी करते हुए एक कवि मिर्जा रोशन जमीर 'नेही' ने ब्रजभाषा में कविताएं की। वह फारसी की परंपरा से जुड़े होने के बावजूद 'नेही' उपनाम से बृज भाषा में कविता लिखता था। बलदेव मिश्रा ने '*सतकविगिराविलास*' नाम से औरंगजेब काल में ब्रजभाषा काव्य लिखा। उसके उत्तराधिकारियों द्वारा भी यह संरक्षण जारी रखा गया।

संदर्भ:

1 बुश, एलिसन,(2010), हिडेन इन प्लेन व्यू : ब्रजभाषा पोयट्स एट द मुगल कोर्ट, कैंब्रिज,*मॉडर्न एशियन स्टडीज, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस,* पृ 267-309।